प्रथम अध्याय

बिहारी : युग, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

कविवर बिहारी रीतिकालीन कविता में कम लिखकर अधिक ख्याति अर्जित करने वाले कवियों में से एक हैं। रीतिकालीन कविता का समय हिंदी साहित्य के इतिहास में संवत् 1700 से 1900 तक स्वीकार किया जाता है। इस 'रीतिकाल' नाम में 'रीति' शब्द एक विशेष प्रकार की 'पद-रचना' या परिपाटी का सूचक है। इस युग में रीतिकालीन कवियों ने ऐसी विशिष्ट प्रणाली को दृष्टिगत रखते हुए काव्य रचना की जिसमें सर्वप्रथम कवि आचार्य धर्म का निर्वाह करते हुए काव्य रचना की रीति या लक्षण प्रस्तुत करते थे और फिर उसके अनुरूप ही काव्यगत उदाहरणों की रचना करते थे। इस प्रकार काव्य रचना में लक्षण बताकर उदाहरण देने की एक परम्परा सी चल गयी थी। इन उदाहरणों में श्रृंगारी अधिक होने के कारण अधिकांश कवियों ने अलंकार, रस, नायक-नायिका भेद, ध्वनि, गुण, दोष आदि के लक्षण उदाहरण प्रस्तुत कर कविता करने की ऐसी रीति डाल दी जिसका पालन दौ सौ वर्षों तक किया जाता रहा। इस विशिष्ट काव्य रीति के पालन एवं रीति काव्य सृजन के आधिक्य के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे "रीतिकाल"[1] नाम दिया। रीतिकालीन की इन प्रवृत्तियों के कारण ही मिश्रबन्धु इसे "अलंकृत काल"[2] तथा आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र "श्रृंगारकाल"[3] कहते हैं।

लगभग दो सौ वर्ष का यह कालखंड ऐतिहासिक दृष्टि से मुगल बादशाहों के राजनैतिक वैभव तथा उत्कर्ष से उनके पतन तक की कहानी है। भक्ति काल के बाद का यह युग अशांति और अव्यवस्था का युग रहा है। मुगल शासन की शक्तिहीनता, बाह्य आक्रमणों, प्रादेशिक शासकों के पारस्परिक युद्धों, मराठो एवं सिखों के आक्रमण कम्पनी शासन की

राज्य विस्तार की महत्त्वाकांक्षा के कारण इस युग के हिंदी भाषा-भाषी प्रदेशों में अशांति, अव्यवस्था व बिखराव का वातावरण बना रहा।

रीतिकालीन साहित्य में आकर काव्य का रूप भक्ति से श्रृंगार की ओर हो जाता है तथा उस श्रृंगार के वैविध्य सम्पन्न वर्णन पर अनेक आक्षेप व आरोप लगाकर उसे घोर श्रृंगारी भी कहा गया। परन्तु इस युग के कवियों के घोर श्रृंगारी होने, उन्हें श्रृंगारी काव्य सृजन की प्रेरणा व प्रोत्साहन मिलने आदि में किन कारणों का योगदान रहा ऐसे अनेक प्रश्नों पर विचार करने पर इसका उत्तर सम्भवत: यह युग, इसमें होने वाली उथल-पुथल व तत्कालीन परिवेश है जिसका प्रभाव साहित्यकारों पर पड़ना स्वभाविक ही है।

रीतिकाल का यह समाज सामन्तवादी पद्धति का समाज था जिसमें उच्च वर्ग के राजाओं तथा सामंतों का जीवन वैभव का जीवन था। पुष्प, इत्र, गंध, फव्वारे, उद्यान, रमणीय-विहार स्थल राजाओं व सामंतों को जहां एक और तृप्ति प्रदान करते थे तो दूसरी और सुरा-सुराही और सुंदरी जैसी विलास सामग्रियों के लोभवश वे नैतिक चेतना से विमुख होते जा रहे थे। आर्थिक मोह तथा कला-संरक्षण के भाव से कवि तथा कलाकार दरबारी बन गये जिससे कविता और कला भी दरबारी बनाते चले गये। काव्य रचना राजाओं की रुचि एवं इच्छा के अनुरूप ही होने लगी थी। राजाओं की वासना तृप्ति ने कविता का उद्देश्य और स्वरूप भी बदल डाला। इसी दरबाराश्रित काव्य रचना होने से आचार्य शुक्ल जी के मत से, "श्रृंगार-वर्णन को बहुत से कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुंचा दिया। इसका कारण जनता की रूचि नहीं, आश्रयदाताओं की रुचि थी, जिनके लिए वीरता और कर्मण्यता का जीवन बहुत कम रह गया था।।"[4] परिणामत: संस्कृत लक्षणों को ध्यान में रखकर कवियों ने आचार्यत्व धर्म का मोह पाला और वे काव्यशास्त्रीय ग्रंथो का निर्माण भी करने लगे। इस युग में कुछ रीति-

इतर काव्य रचनाएं भी मिलती हैं जिनमें भक्तिपरक, नीतिपरक, वीरकाव्य परक, प्रकृति परक रचनाएं भी हैं परन्तु अत्यंत गौण रूप में, क्योंकि मुख्य रूप से तो इस युग में श्रृंगार ही अधिक मुखर रहा है।

अतः रीतिकालीन परिवेश तथा युगीन परिस्थितियों की आधार-शिला पर स्थापित होने के कारण ही इस साहित्य का यह स्वरूप निर्मित हुआ यह तो स्पष्ट ही है। मुगल शासकों के प्रभाव स्वरूप फ़ारसी भाषा और साहित्य का प्रभाव भी पर्याप्त मात्रा में इस काव्य पर पड़ा है। इसी प्रकार संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परम्परा में आचार्य भरत से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के सभी आचार्यों तथा उनके रस, अलंकार, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति आदि प्रभाव को भी रीतिकालीन काव्यग्रन्थों में देखा जा सकता है। अलंकार-निरूपण, रस-विवेचन, नायक नायिका भेद तथा नख-शिख वर्णन आदि का जो विशाल भंडार इस युग के साहित्य में उपलब्ध है, वह संस्कृत की प्रेरणा से ही है।

विद्धानों ने रीति परम्परा को स्पष्टत: अपनाने, काव्य में रीति के प्रत्यक्ष रूप में पालन करने तथा रीति से सर्वथा मुक्त रहते हुए भी रस दृष्टि से संयुक्त रचना के आधार पर रीतिकालीन काव्य को तीन वर्गों में विभाजित किया है-

रीतिबद्ध काव्यधारा :

रीति परम्परा में बंधकर प्रमुख रूप से लक्षण-ग्रंथ लिख उन्हें स्पष्ट करने के लिए उदाहरण स्वरुप काव्य की रचना करने वाले कवियों को रीतिबद्ध काव्य धारा में गिना जाता है। जैसे चिंतामणि, मतिराम, देव, भिखारीदास, पद्माकर।

रीतिसिद्ध काव्यधारा :

इसमें वे कवि है जिन्होंने लक्षण बताने वाले ग्रंथ नहीं लिखे लेकिन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस परम्परा की मान्यताओं का अपने काव्य में प्रयोग किया तथा काव्य सृजन के क्षणों में उनका पूर्ण ध्यान रखा, जैसे- बिहारी।

रीतिमुक्त काव्यधारा :

इस काव्यधारा में वे कवि है जिन्होंने लक्षण व रीति की परम्परा से पूर्ण रूप में स्वतंत्र होकर विशुद्ध श्रृंगार की अनुभूतिपरक काव्य की रचना की। जैसे- घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर।

इन्हीं रीतिकालीन काव्यधारा के कवियों में कवि बिहारी रीतिसिद्ध काव्यधारा के ऐसे एकमात्र कवि हैं जिन्होंने अपनी काव्यप्रतिभा के बल पर इस स्वतंत्र काव्यधारा का निर्माण कर लिया।

1.1 : बिहारी का युग :

कोई भी कवि जिस समय के समाज और वातावरण में जन्म लेता है, बड़ा होता है वह उस देश, समाज व वातावरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। अपनी विशिष्ट अनुभव शक्ति व चेतना के अनुसार कम या ज्यादा कवि पर उस युगीन परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसलिए एक सजग कलाकार अपने युग की परिस्थितियों की उपेक्षा कर साहित्य सृजन नहीं कर सकता। डॉ. हरवंशलाल शर्मा के शब्दों में, "सच्चे कवि में लोक निरिक्षण की प्रवृत्तियां उस पर जाने या अनजाने अपनी छाप लगा ही देती हैं।.... जो कवि समाज का सच्चा

प्रतिनिधित्व कर सकता है वह चाहे लोकनायक हो या ना हो, साहित्य के क्षेत्र में नूतन पथ प्रशस्त करे या न करे; महान अवश्य होता है।"[5] बिहारी ऐसे ही महाकवि थे। वह युग में और युग उनमें व्याप्त था। प्राचीन परम्पराओं के साथ समसामायिक परिस्थितियों का भी उनकी रचनाओं में ऐसा समन्वित समावेश हुआ है कि वह सूक्ष्म बुद्धि व्यवहार का विषय बन गया है। चूँकि 'साहित्य समाज का दर्पण' अर्थात् प्रतिबिम्बन होता है, यह कथन सार्वभौम कलाकारों पर सत्य उतरता है और इसलिए बिहारी का साहित्य भी इस कथन का अपवाद नहीं है, अत: उनके कवि कर्म के मर्म को समझने के लिए उनके युग विशेष की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा कलात्मक परिस्थितियों पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है।

राजनीतिक दृष्टि से बिहारी के युग में अकबर का शासन था। इस समय सर्वत्र, शान्ति, सुख-समृद्धि और वैभव व्याप्त था। बिहारी का जीवन मुख्यतः शाहजहाँ के शासन-काल से सम्बन्धित है। परन्तु बचपन के कुछ वर्ष उन्होंने अकबर के समय में तथा यौवनावस्था के प्रारम्भिक वर्ष जहाँगीर के शासन काल में भी व्यतीत किये थे, "अकबर ने देश में शासन व्यवस्था को सुगठित किया था, उसके जीवन की विषमताओं ने उसे व्यवहारिक धरातल पर लाकर उदार और सहिष्णु बनाया था, अत: उसने अपने जीवन काल में व्यवहारिक नीति को अपनाकर हिन्दू-यवन मैत्री का वातावरण प्रस्तुत किया।..... दरबार का शाही वातावरण, वैभव-प्रदर्शन, चमत्कार और विलास से परिपूर्ण होना यह उस काल की विशेषता थी। जनता भी इस परिस्थिति से परिचित थी, 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार प्रजा भी सामन्ती वातावरण और उसकी विशेषताओं से आकृष्ट थी। सम्पूर्ण देश में वीरता दिखाना, शानशौकत करना, कलाकारों - नर्तको-नर्तकियों को आश्रय देना प्रचलित था। यह परिस्थितियां जहाँगीर और शाहजहाँ तक पूर्ण अविकल रूप में मिलती हैं, और इस युग में मिश्रित समस्त साहित्य में

परिलक्षित होती हैं।"[6] जहाँगीर ने अपने शासन काल में जो विस्तार किया शाहजहाँ ने उसकी अत्यधिक वृद्धि कर उत्तरी भारत के साथ साथ दक्षिण में अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा तथा उत्तर-पश्चिम में सिंध से असम, अफगान प्रदेश तक अपना साम्राज्य स्थापित किया। इस समय तक मुगल शासन का वैभव चारों और फ़ैल चुका था। गुरुदेव नारायण की भाषा में, "जहाँगीर और शाहजहाँ का शासनकाल मुगलकालीन इतिहास में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण वातावरण, सशक्त शासन व्यवस्था, कला और साहित्य की सुनिश्चित उन्नति के कारण यह काल स्वर्ण-युग के नाम से अभिहित किया जाता है।"[7] परिवर्तन का शाश्वत चक्र निरंतर चलता रहता है जिसने मुगल शासक के वैभव को पलटना शुरू कर दिया जिससे वैभव विलास के शाहजहाँ के दिन अधिक नहीं रहे। पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत पर बाह्य आक्रमणकारी हमलों के प्रभाव से उत्पन्न विषम परिस्थितियों में संवत 1714 में शाहजाहाँ बीमार पड़ गया। फिर औरंगजेब द्वारा राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा से अपने पिता शाहजहाँ को बंदी बनाना, अपने भाइयों का कत्ल करवाना और सभी के प्रति अविश्वासी दृष्टि सर्वविदित ही है। यह दौर राजनीतिक उठापटक से भरा हुआ था। औरंगजेब ने राजनीतिक सख्ती को कुछेक धार्मिक मामलों पर लागू कर दिया। इन कारणों से असंतोष और राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण कायम हो गया।

बिहारी राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे इसलिए उन्होंने राजाओं के वैभव और विलास को देखा था। इन सब परिस्थितियों का प्रभाव बिहारी पर भी पड़ा था जो उनके साहित्य में क्रिया-प्रतिक्रिया स्वरूप मिलता है। बिहारी की स्वयं अपनी भी कुछ राजनीतिक एवं प्रशासनिक मान्यातएं थी जिसे अन्योक्ति के रूप में उन्होंने यदा-कदा अभिव्यक्त भी किया है।

सामाजिक दृष्टि से यह घोर पतन का युग था। समाज में सामन्तवादी शक्ति अधिक प्रभावशील होने के कारण उसके सभी दोष का असर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सामान्य लोगों पर पड़ रहा था। इस सामन्तवादी व्यवस्था का केंद्र बिंदु बादशाह या उसके बाद ओहदे अनुसार मनसबदार, अमीर, उमराव व अन्य कर्मचारी थे जो अपने से ऊपर वालों को प्रसन्न रखना ही अपना कर्तव्य मानते थे और नीचे के लोगों को सम्पत्ति मात्र समझ उनका शोषण करते थे। शासित वर्ग में एक ओर श्रमजीवी और कृषक थे तथा दूसरी ओर सेठ साहूकार, दुकानदार और व्यापारी थे। शासक वर्ग इन दोनों से ही कर के रूप में अपनी आय प्राप्त करता था जबकि यह दूसरा वर्ग सेठ, साहूकार आदि श्रमिक और कृषिकों की कमाई को विभिन्न प्रकार से हड़प कर अपनी जीविका कमाते थे। अर्थात् हर ऊँचा वर्ग निचले वर्ग का शोषक था। इस प्रकार यह कृषक व श्रमजीवी वर्ग सभी ओर से शोषित था। सेनाओं के लगातार युद्ध, आवागमन, अतिवृष्टि और अनावृष्टि के कारण भी इन्हें कृषि की भारी हानि वहन करनी पड़ती थी जिसके फलस्वरूप इन्हें किसी न किसी के बेगार भी करनी पड़ती थी। अत: इस युग में गरीबों की स्थिति अत्यंत शोचनीय थी और शासक वर्ग बिना किसी श्रम के ही सम्पन्न था, "जनसाधारण की चिकित्सा, शिक्षा, सम्पति-रक्षा आदि का भी इस काल में कोई प्रबंध न था। ऐसी शोचनीय अवस्था में यदि लोग भाग्यवादी अथवा नैतिक मूल्यों से रहित थे तो, कोई आश्चर्य की बात नहीं। कार्य-सिद्धि के लिए उत्कोच लेना-देना तो साधारण बात थी ही, विलासता भी इसी कारण बढ़ गयी थी।"[8]

नारी को अपनी सम्पति समझ उसका भोग करना इस समय में जीवन का मूल मन्त्र होने लगा था। विलास के नित नए उपकरणों की खोज कर उनका संग्रह तथा सुरा-सुराही की साधना में ही लगा रहना इन सामंतवादियों का नित्य कर्म बन चुका था। किसी भी कन्या का अपरहण इनके लिए सामान्य बात हो गयी थी कदाचित इसलिए ही लड़कियों के अल्पायु में

विवाह से समाज में बाल विवाह जैसी कुरीति को प्रश्रय मिला साथ ही बहु-विवाह, सती प्रथा, स्त्रियों की पर्दा प्रथा, जनसामान्य का अंधविश्वास, रुढ़िवादिता आदि कई प्रकार के सामाजिक दोष अपने पैर पसार रहे थे जिनका वर्णन हमें बिहारी काव्य में भी मिलता है, यथा

अंधविश्वासी, कर्मकांड की प्रवृत्ति :

"होमति सुखु, करि कामना तुमहिं मिलन की, लाल।
ज्वालामुखी सी जरति लखि लगनि - अग्नि की ज्वाल।।"[9]

बाह्ययाडम्बर :

"जपमाला, छापै , तिलक सरै न एकौ कामु।
मन - काँचे नाचै वृथा, साँचे राँचे रामु।।"[10]

शासन के सर्वाच्च स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार का भी जनसाधारण के जीवन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा था। उच्च आदर्श और जीवन मूल्य विस्मृत होकर स्वार्थ सिद्धि ऊपर उठ चुकी थी। धनाधिक्य ने सभ्रांत वर्ग को विलासी और दुराग्रही बना दिया था। यही कारण है कि कई कवि जिस काव्य का सृजन कर रहे थे वह जनसामान्य के हितों से परे था। कला, संस्कृति, व्यापार, सामाजिक मापदंड, आचार-विचार सभी संकटो से गुजर रहे थे। अत: सामाजिक जीवन निरंतर हास की ओर उन्मुख था। दुराचार, अनाचार और व्याभिचार के इस युग में सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह से बिगड़ गयी थी। नैतिक मूल्यों का पतन धर्म की अवनति का घोतक होता है सामाजिक अव्यवस्था और नैतिक मूल्यों के गिरने से इस समय धर्म की भारी दुर्गति हुई। शासक वर्ग अपने भोग विलास में पूर्ण रूप से मग्न था, अंधविश्वास और बाह्याडम्बर की वृद्धि के परिणामस्वरूप धर्म पतनोन्मुखी हो चला था। हिन्दू मंदिरों में भी

मठों की तरह दासी की मान्यता प्रचलित होने लगी थी जिससे धर्म के क्षेत्र में कामुकता और विलासिता ने जन्म ले लिया। इसी से पवित्र धार्मिक स्थान व्याभिचार के अड्डे बन गए थे। डॉ. ईश्वर दत्त शील के अनुसार, "मठ और मंदिर देव दासियों की पायलों और नूपुरों की रुनझुन से छन-छन गूँजते रहते थे।"[11] मुसलमान धर्म के राजधर्म होने के कारण औरंगजेब के शासनकाल तक हिन्दुओं पर धार्मिक अत्याचार भी बढ़ने लगे थे जिससे हिन्दू-मुसलमानों का आपसी सौहार्द भी घृणा में बदलता जा रहा था। इस प्रकार धर्म की दशा इस युग में अव्यवस्थित और समृद्ध के विपरीत विपन्न थी। उसमें पाखंड, व्याभिचार और धार्मिक कट्टरता का बोलबाला था।

सांस्कृतिक दृष्टि से असंतुलन इस युग में औरंगजेब के शासन से मिलता है। उससे पहले का समय हिन्दू-मुस्लिम दो भिन्न संस्कृतियों के मिलन का यह समय शाहजहाँ के पश्चात, विघटित होने लगा। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ की उदारवादी नीतियों तथा पूर्व में सूफी संतो के उपदेशों से जो संस्कृति को निकट लाने का प्रयास हुआ था, वह औरंगजेब की कट्टरता के कारण धराशायी होने लगा। पारस्परिक मेल-जोल, आदान-प्रदान के कम होने के साथ ही एक दूसरे के धर्म को समझने के प्रयासों व उनके प्रति आस्था और विश्वास में भी कमी आने लगी थी।

साहित्य और कलात्मक दृष्टि से यह युग पर्याप्त समृद्ध रहा है। प्रदर्शन-प्रधान, चमक-दमक और अलंकरण को स्वीकार करने वाले इस युग में सामान्य जन से लेकर राजदरबार व निम्न से लेकर उच्चकोटि के कलाकार तक इस प्रवृत्ति के अभ्यस्त थे। कवि आचार्य और कवि शिक्षक की भूमिका एक साथ निभाने वाले ये कवि राजा और नवाबों द्वारा अत्यंत सम्मान तथा पुरस्कार आदि से प्रोत्साहित किये जाते थे। इसी मोहवश काव्य सृजन इस काल

में परिमाण व वैविध्य दोनों ही दृष्टियों से अधिक हुआ। डॉ. नगेन्द्र इस स्थिति का वर्णन करते हैं, "इस काल के कवि और कलाकार यद्यपि साधारण वर्ग के व्यक्ति हुआ करते थे, तथापि अपने आश्रयदाता मुगल सम्राटों अथवा देशी राजाओं व नवाबों से उन्हें इतना सम्मान मिलता था कि समाज के प्रतिष्ठित लोगों में उनकी गणना होती थी।.... इन लोगों ने अपनी कला का निपुण और परिमाण दोनों ही दृष्टि से अधिकाधिक विकास किया।"[12]

काव्य शास्त्र एवं श्रृंगार साहित्य की विपुल परम्परा भले ही संस्कृत से विकसित हुई हो परन्तु उसे मुखर होने का पूरा वातावरण रीतिकाल में मिला है। बिहारी युगीन काव्य पर कई संस्कृत ग्रंथ 'रसमंजरी', 'रसतरंगिनी', 'साहित्यदर्पण', 'ध्वन्यालोक', 'काव्यादर्श' आदि का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। प्राकृत के 'गाथा सप्तशती', संस्कृत के 'आर्य सप्तशती', 'अमरूक शतक' आदि ग्रंथों का इस काव्य की भौतिकता को पृष्ट करने में विशेष योगदान रहा है। भक्तिकालीन एकरसता तथा जीवन के प्रति विरक्ति आदि के भाव को इन कवियों ने अपने सरस साहित्य में सींच कर उसमें उत्साह की लालसा जगाई। इसके साथ भक्ति और नीति की गंगा में भी मनचाहे रूप से गोता लगाते रहे। इन प्रयासों में अभाव रहा तो कवि की विचारात्मक स्वछन्द उड़ान का। डॉ.नगेन्द्र के शब्दों में, "दुर्भाग्य की बात यह रही कि इन्हें वह स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हो सकी, जो सृजन के लिए अनिवार्य है। इन्हें सामान्य रूप से आश्रयदाताओं की अभिरूचि का विशेष ध्यान रखना पड़ता था, जिसका परिणाम यह होता था कि प्रतिभावान होते हुए भी ये लोग अपने सृजन का उत्तमोत्तम रूप प्रस्तुत करने में असमर्थ रहते थे। यह सब होते हुए भी इस युग के साहित्य और कला का अपना महत्त्व है और दोनों की ऐसी विशेषताएँ हैं, जो सहज ही दूसरे युगों की तत्सम्बन्धी रचनाओं में पृथक देखी जा सकती है।"[13]

यदि विचार किया जाए तो राजाओं के संकेतों पर पनपने वाला साहित्य भले ही अपने उत्तम रूप में सामने ना आ पाया हो परन्तु जिस भी रूप में वह आया, उसमें अपना सामाजिक एवं साहित्यिक दायित्व निभाने का प्रयास अवश्य किया है। इस युग का कवि भक्तिकालीन कवियों की तरह समाजसुधारक या नीति उपदेशक चाहे ना बना हो, पर काव्य रस की मधुर लहरियाँ बिखरने में पूर्णत: सफल रहा है। जनजीवन की भाषा ब्रजभाषा को उत्कर्ष ले जाने के साथ ही काव्यशास्त्र को भी हिंदी में लाने का श्रेय इन्हीं कवि आचार्यों और उनकी कविता को है।

कुल मिलाकर बिहारी युगीन राज्याश्रित कवियों और जनकवियों द्वारा रचित यह साहित्य गुण और परिमाण की दृष्टि से अत्यंत विशद एवं सम्पन्न है जो इस युग में साहित्यिक महत्त्व को द्योतित करता है।

साहित्यिक के साथ ललित कलाएँ भी इस इस युग में समृद्ध तथा पृष्ट हुई। जहाँगीर का राज्यकाल कलाओं के संरक्षण एवं विकास में विशेष महत्त्वपूर्ण रहा परन्तु औरंगजेब के शासनकाल में कलाओं को संरक्षण मिलना कम हो गया इसी से आगे चलकर कलाओं का धीरे-धीरे ह्रास होने लगा। इन ललित कलाओं में स्थापत्यकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला आदि हैं जिनकी स्थितियों पर विचार करना आवश्यक है।

स्थापत्य कला रीतिकाल से पूर्व अपने उत्कर्ष पर थी क्योंकि मुसलमानों की मस्जिद का निर्माण उस समय लगातार हो रहा था। स्वयं बाबर ने कुस्तुन्तुनिया से कारीगर बुलाकर दो मस्जिदों का निर्माण कराया। परन्तु हुमायूँ के स्थापत्य कला पर विशेष ध्यान न देने के बाद अकबर के काल में ईरानी वास्तु को प्रश्रय मिलने के कारण फतेहपुर सीकरी व आगरे जैसे किलों का निर्माण हुआ। जहाँगीर की स्थापत्य की बजाय चित्रकला में रूचि होने के कारण

नूरजहाँ के आदेश पर उसने जहाँगीर का मकबरा तथा दो एक भवन बनवाये। शाहजहाँ ने स्थापत्य कला को प्रतिष्ठित करने में विशेष रूचि ली और दीवान-ए-आम, दीवान-ए-ख़ास, जामा मस्जिद, मोती मस्जिद व ताज महल का निर्माण करवाया। शाहजहाँ के पश्चात यह कला पतनोन्मुख होने लगी क्योंकि औरंगजेब ने कला प्रेमी न होने के कारण इस कला को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया।

मूर्तिकला पर इस युग में नकारात्मक प्रभाव पड़ा क्योंकि भारत में मुसलमानों का अखंड साम्राज्य होने के कारण वे मूर्तिपूजा के विरोधी थे और इसलिए उन्होंने इस कला को कोई विशेष संरक्षण प्रदान नहीं किया। श्री रायकृष्णदास ने मूर्तिकला के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि "13वीं सदी के बाद उत्तर भारत की मूर्तिकला में जान नहीं रह जाती। मुसलमान विजेता मूर्ति के विरोधी थे, फलत: उनके प्रभाववश यहाँ के प्रस्तर शिल्प के केवल उस अंश में कला रह गयी जिसमें ज्यामितिक आकृतियों व फूल-बूटे की रचना होती थी। मूर्तियों के प्रति राज्याश्रय के अभाव में ऊँचे दर्जे के कारीगरों ने अपनी सारी प्रतिभा अलंकरणों के विकास में लगाई।"[14] वास्तविकता तो यह है की इस युग में कला की दृष्टि से सर्वाधिक ह्रास मूर्तिकला का ही हुआ।

भारतीय चित्रकला के इतिहास में सोलहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी का समय महत्त्वपूर्ण रहा है। हिन्दू और मुस्लिम दोनों की धर्मो के राजाओं का चित्रकला पर अनुराग होने के कारण यह कला इस काल में अपने चरमोत्कर्ष पर थी। विशेषत: मुगल वंश चित्रकला का प्रेमी रहा है। बाबर और हुमायूँ आदि मुगल राजाओं ने अपने विषम काल में भी चित्रकारों को आश्रय दिया। अकबर स्वयं एक चित्रकार था इसलिए उसने भारतीय और ईरानी चित्रकला के समन्वय का प्रयास किया जो कि 'अकबर कला' कहलाई। जहाँगीर के स्वयं चित्रकार और

चित्रकला के ज्ञाता होने के कारण उसने चित्रकला को विकसित करने में योगदान दिया। यद्यपि शाहजहाँ वास्तुकला का प्रेमी था, फिर भी उसके समय में चित्रकला को उचित आश्रय व प्रोत्साहन मिला था, "शाहजहाँ का पुत्र दाराशिकोह चित्रकला का अत्यंत प्रेमी था। उसने अपने उत्कृष्ट चित्रों का संग्रहालय भी निर्मित किया था।..... शाहजहाँ के काल में संरक्षण और आश्रय की प्रणाली इतनी अधिक प्रसार पा गयी थी कि उसके अनुकरण में मुगल दरबार के अनेक हिन्दू तथा मुसलमान कुलीन पुरुषों ने ललित कला को संरक्षण देना आरम्भ किया।..... इस तरह शाहजहाँ के काल में आते-आते कला के प्रति प्रेम भावना मुगल तथा राजपूत दरबार के अतिरिक्त अन्य वर्गों के बीच भी बढ़ने लगी थी।"[15]

मुगलों के काल में जहां सभी कलाओं को महत्त्व मिल रहा था वहीं मुगल शासक औरंगजेब का समय सभी कलाओं के ह्रास व पतन का काल रहा क्योंकि औरंगजेब कला को विलास का साधन मानकर उसे धार्मिक भावना का विरोधी मानता था। इसी कारणवश यहाँ आकर चित्रकला को पर्याप्त संरक्षण न मिल पाने के अभाव में वह परवर्ती काल में हमें विश्रृंखलित रूप में मिलती है।

पूरे रीतिकाल में चित्रकला के दो प्रधान रूप मिलते हैं- एक राजपूत कला और दूसरा मुग़ल कला। राजपूत कलाकारों के चित्रों के मूल में उनकी वैष्णव भावना थी इसलिए वे वैष्णव-साहित्य तथा संगीतशास्त्र में वर्णित राग रागनियों के चित्र बनाने की ओर प्रवृत्त थे। अर्थात् "राजपूत कला के मूल में भारतीय साहित्य और संस्कृति थी, इसने एक महान कार्य यह किया कि विकासमान मुगल शैली के प्रभाव को रोककर विदेशियों पर भारतीयता का रंग भी चढ़ाया।"[16] मुगल कला के मूल में तत्त्व ईरान, फारस और गांधार के थे किन्तु अकबर के

काल में हिन्दू कला के भी अनेक तत्त्व इसमें शामिल हो जाने से इन दोनों के योग से समन्वित शैली को मुग़ल शैली कहा गया।

संगीतकला की स्थिति अकबर से पूर्व के मुगल शासकों को संगीत से कोई रूचि न होने के कारण स्थिर थी। अकबर के समय में अकबर के संगीत से लगाव के कारण यह कला अपने उत्कर्ष पर पहुँची। परन्तु शाहजहाँ के बाद संरक्षण के अभाव में इस कला में भी स्थिति चिंताजनक बन जाती है।

संक्षेप में कहें, बिहारी का युग राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक दृष्टि से भारी उथल-पुथल का रहा था। राजनीतिक शासन व्यवस्था में मुगलों के उत्कर्ष से पराभव के बीच भारतीय समाज में व्याभिचार, अनाचार, वेश्यावृत्ति, बाह्याडम्बर, अंधविश्वास जैसी अनेक कुरीतियाँ अपने पैर पसार चुकी थीं। आरम्भ में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों का जो समन्वय, हिन्दू मुस्लिम मैत्री सम्बन्धों में जो मजबूती आई वह भी बाद में धार्मिक उन्मादता व कट्टरता के कारण बिखरने लगी। ऐसी स्थिति में साहित्यिक एवं कला जगत में हुआ विकास आश्चर्यचकित कर देता है। इस समय में ही कला अपने उस रूप में उत्कर्ष पर पहुँचती है जिसकी इस युग में उम्मीद भी नहीं की जा सकती थी। काव्यकला, स्थापत्यकला, चित्रकला सभी को इस युग में उचित संरक्षण मिला जिसके कारण इनमें आया विकास भारतीय साहित्य व संस्कृति में दिए जाने वाले योगदान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस सभी युगीन परिस्थितियों की क्रिया-प्रतिक्रिया बिहारी में भी हमें देखने को मिलती है।

1.2 बिहारी का व्यक्तित्व :

सामान्यतः माना जाता है कि प्रत्येक साहित्यिक रचना में उसके रचनाकार के व्यक्तित्व का थोड़ा- बहुत अंश प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अवश्य समाहित रहता है। कवि

अपने काव्य में जिन विचारों, भावों और कल्पना आदि का प्रयोग करता है, वह प्रायः उसके अध्ययन, अनुभव और चिन्तन जगत पर आधारित होता है, इसलिए किसी भी काव्य रचना के सम्यक विश्लेषण के लिए उस कवि के व्यक्तित्व का अध्ययन आवश्यक हो जाता है क्योंकि व्यक्तित्व के निर्माण में जितना सहयोग युग व देशकाल का होता है उतना ही उस सामाजिक और पारिवारिक वातावरण का जिसमें वह पला बढ़ा और प्रभावित हुआ है। इसलिए इन परिवेशगत तथ्यों के बीज जीवन-चरित्र में भी छिपे होते हैं जिसके लिए जीवन वृत्त का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। कविवर बिहारी के व्यक्तित्व को समझने के लिए उनके जीवन-वृत्त को जानना महत्त्वपूर्ण है।

आरम्भ में जीवन वृत्त लिखने की परम्परा ही हमारे साहित्य जगत में नहीं मिलती। इसलिए वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, सूर, तुलसी, कबीर आदि कवियों का कोई प्रामाणिक जीवन वृत्त नहीं मिलता। प्रामाणिकता के इस अभाव में इनके जीवन सम्बन्धी अनेक प्रश्न विवादास्पद रहे हैं, यही स्थिति रीतिकालीन कवि बिहारी की भी है।

नाम संबंधी मत :

बिहारी पर पहला विवाद उनके नाम से ही विद्वानों में शुरू हो जाता है। बिहारी के नाम को लेकर विद्वानों में मतभेद रहा है कि 'बिहारी सतसई' के रचयिता कवि का नाम 'बिहारीलाल' है या 'बिहारीदास'। इसमें विद्वानों का एक वर्ग, कृष्णलाल, अम्बिकादत्त व्यास, ग्रियर्सन, मिश्रबंधु आदि कवियों के साथ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी अपने इतिहास में कवि बिहारी का परिचय "बिहारीलाल"[17] नाम उल्लिखित कर 'बिहारीलाल' नाम को लेकर मतैक्य हैं।

वहीं गणपति चन्द्र गुप्त बिहारी के भानजे कुलपति मिश्र द्वारा रचित एक दोहे तथा जगन्नाथदास 'रत्नाकर' जी को प्राप्त हुई 'बिहारी सतसई' की एक प्राचीन प्रति पर अंकित नाम व उन वंश वृक्षों का तर्क अपने मत की पृष्टि हेतु देते हुए 'बिहारीदास' नाम का समर्थन करते हैं। भले ही बिहारी के भांजे कुलपति मिश्र द्वारा रचित दोहे में 'बिहारीदास' नाम का प्रयोग है, तथापि इस विवाद से परे बिहारी की काव्य प्रतिभा, काव्यात्मक वैशिष्ट्य और लोकप्रियता को देखते हुए और उनकी श्रेष्ठता के लिए जगन्नाथदास रत्नाकर जी द्वारा प्रयुक्त विशेषण 'कविवर बिहारी' बिहारी के नाम में सबसे उपयुक्त प्रतीत होता है जिससे नाम की विशिष्टता भी सिद्ध हो जाती है।

जन्म संबंधी मत :

बिहारी के जन्म के सम्बन्ध में एक दोहा बिहारी-सतसई के टीकाकार द्वारा रचित है :

संवत् जुग सर रस सहित भूमि रीति गिनी लीं।

कातिक सुदी बुध अष्टमी, जनम हमें विधि दीन।।

यह दोहा स्वयं बिहारी द्वारा रचित न होने पर भी उनके जन्म समय पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। हिंदी साहित्य के लगभग सभी साहित्यकार व इतिहासकार यह मानते हैं कि बिहारी का जन्म सत्रहवीं शती में हुआ था, "अम्बिकादत्त व्यास द्वारा रचित 'बिहारी - बिहार' की पदबद्ध भूमिका में रचित इस दोहे का अर्थ 'अंकानां वामतो गतिः' के आधार पर जुग=2, सर=5, रस=6, भूमि=1 अर्थात् 1652 विक्रमी होगा।"[18]

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' तथा डॉ. नगेन्द्र भी इसी जन्म समय की पृष्टि करते हैं। अत: इसी तिथि को प्रामाणिक तिथि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

जन्म स्थान :

बिहारी के जन्म स्थान, बाल्यकाल, यौवन एवं विवाह के सम्बन्ध में अधिक मतभेद नहीं है क्योंकि इस सम्बन्ध में एक दोहा मिश्रबंधु विनोद में उद्धृत हुआ है जिसे बिहारी द्वारा ही रचित माना गया है -

जनमु ग्वालियर जानियै खंड बुंदैलै बाल।

तरूनाई आई सुघर, मथुरा बसि ससुराल।।

विभिन्न विद्वानों ने इस दोहे को प्रामाणिक मानते हुए बिहारी का जन्म स्थान ग्वालियर, बाल्यावस्था बुन्देलखण्ड, तथा युवावस्था और विवाह मथुरा में होना स्वीकार किया जाता है। आचार्य रामचंद शुक्ल ने, "बिहारी का जन्म स्थान ग्वालियर के निकट बसुआ गोविंदपुर" [19] नामक स्थान को माना है।

बिहारी का वंश और पिता :

बिहारी के वंश और पिता इन दो तथ्यों पर भारी मतभेद रहा है। बिहारी रचित दोहा इस सम्बन्ध में प्रकट है:

"प्रगट भए द्विजराज कुल, सुबस बसे ब्रज आइ।

मेरे हरौ कलैशु सबु, केसौ केसौराइ।।"[20]

इस दोहे के आधार पर विचार करने से द्विजराज कुल का अर्थ ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होना हुआ। इसमें केशव का अर्थ भगवान कृष्ण और केशव राय पिता से दुखों को हरने का अनुरोध व्यक्त करने के अर्थ में हुआ है। इसी सम्बन्ध में प्रथम वर्ग के विद्वानों की मान्यता है

कि इस दृष्टि से बिहारी माथुर चौबे होते हैं और रीतिकालीन प्रसिद्ध आचार्य केशवदास के शिष्य होते हैं। द्वितीय वर्ग में कुछ विद्वान इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण 'केशव राय' शब्द से केशवदास को इनका गुरु नहीं पिता मानते हैं। इन प्रथम श्रेणी के विद्वानों में जगन्नाथदास रत्नाकर, पंडित गिरिधर शर्मा, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, रामचन्द्र शुक्ल[21] एवं पंडित लोकनाथ द्विवेदी[22] आते हैं। जिनकी मान्यता है की बिहारी लाल जी धौम्य गोत्रीय माथुर चौबे थे। "बिहारी की बहन का विवाह चूँकि मिश्र कुल में हुआ था और चौबे ब्राह्मणों की कन्याएं आज भी मिश्र कुल में आती हैं। इसी से बिहारी का चौबे होना प्रमाणित होता है।"[23] बिहारी के सन्दर्भ में इस तर्क के साथ यही मत बहुमान्य है।

बिहारी के पिता के विषय में मतभेद का मूल आधार भी यही दोहा है। जिसके आधार पर कुछ विद्धान 'केशवराय' से केशवदास अर्थ लेकर बिहारी को रीतिकालीन कवि केशवदास का पुत्र मानते हैं तो वहीं कुछ विद्वान इस मत के विपरीत हैं। गणपति चन्द्र गुप्त केशवराय को बिहारी का पिता मानते हुए लिखते हैं, "इसके पिता प्रसिद्ध कवि केशवदास ही थे। केशवदास का जीवन काल, निवास-स्थान, व्यक्तित्व, काव्य-प्रवृत्तियाँ आदि तो इस दृष्टि से अनुकूल पड़ती हीं है, इसके अतिरिक्त केशवदास के वंश वृक्ष में भी उनके एक पुत्र का नाम 'बिहारीदास' मिलता है। अत: अब इसमें कोई संदेह नहीं कि सतसईकार बिहारी प्रसिद्ध कवि केशवदास (रामचन्द्रिका के रचयिता) के पुत्र थे।"[24] गणपति चन्द्र गुप्त के इस मत का समर्थन गणपति चन्द्र गुप्त के पुत्र रमेशचन्द्र ने भी, "हमें इसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है।"[25] कहकर किया है।

इस विषय में प्रायः अधिक उलझन नहीं होती क्योंकि केशव सनाढय ब्राह्मण थे और बिहारी माथुर चौबे। पिता पुत्र के गौत्र में यह अंतर सम्भव नहीं हो सकता। केशव और बिहारी

में इन कई समानताओं का कारण बिहारी का केशवदास के सानिध्य में कुछ समय रहकर काव्याभास करना भी हो सकता है अर्थात् केशवदास बिहारी के गुरु हो सकते हैं। परन्तु इस दोहे से इतना अवश्य निश्चित होता है कि बिहारी के पिता का नाम केशव अथवा केशवराय था जो कि उच्चकोटि के विद्धान एवं कवि रहे होंगे। बिहारी के पिता के इस नाम का समर्थन (बिहारी के भानजे) कुलपति मिश्र द्वारा रचित 'संग्राम सार' के एक दोहे से भी होता है

लेकिन एक ओर केशव तथा बिहारी इन दोनों प्रसिद्ध रीतिकालीन कवियों के बीच पिता-पुत्र सम्बन्ध की बात आकर्षक भी लगती है और उसकी सम्भावना भी प्रतीत होती है परन्तु कुछ बातें इस सम्बन्ध में अधिक विरोधी होने के कारण इस मत में शंका उत्पन्न करती हैं जिसमें, "पहली बात कि बिहारी माथुर चौबे थे और केशव स्वयं को सनाढ्य ब्राह्मण कहते हैं। दूसरी बात कि बिहारी-बिहार में बिहारी के पितामाह का नाम वासुदेव होने का जिक्र है जबकि केशव ने अपने पितामाह का नाम काशीराम बताया है और इनसे पृथक तीसरी बात की इन दोनों कवियों में पिता-पुत्र सम्बन्ध का होना जनश्रुति में प्रचलित नहीं है।"[26]

बिहारी के भाई तथा बहन भी थी। उनकी इसी बहन के पुत्र कुलपति मिश्र हैं, "बिहारी के पिता इन्हें आठ वर्ष की आयु में ही ग्वालियर से ओरछा रियासत ले गए। वहाँ महाकवि केशवदास से बिहारी का सम्पर्क स्थापित हुआ। फलस्वरूप केशवदास जी से आपने काव्यग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया। ओरछा के समीपवर्ती गुढ़ा ग्राम में निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुभवी महात्मा नरहरिदास रहते थे। बिहारी के पिता इन्हीं के शिष्य थे।"[27] डॉ.रवीन्द्र कुमार जैन के इस कथन में केशव द्वारा बिहारी का शिक्षा ग्रहण करना और उनके पिता केशवराय का नरहरिदास जी का शिष्य होना दो अलग अलग घटनाओं में दो अलग व्यक्तियों की और स्पष्ट संकेत करता है जिससे बात को मानने में भी संकोच नहीं रह जाता कि बिहारी

के पिता कोई अन्य कवि केशवराय रहें होंगे, प्रसिद्ध कवि केशवदास से तो उन्होंने शिक्षा ही ग्रहण की थी।

गुरु एवं आश्रयदाता :

बिहारी ने महात्मा नरहरिदास से ही संस्कृत, धर्मशास्त्र एवं प्राकृत का अध्ययन किया था। "बिहारी के पिता इन्हीं के शिष्य थे। बिहारी ने इनसे ही संस्कृत, धर्म शास्त्र एवं प्राकृत का अध्ययन किया।"[28] संवत् 1664 में महाकवि केशवदास के देहांत के पश्चात ही बिहारी के पिता, बिहारी और उनके भाई-बहन को वृन्दावन ले आये थे क्योंकि "वृन्दावन में बिहारी ने साहित्य के साथ संगीत का भी अभ्यास किया। उसी समय इनका विवाह माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण परिवार में हुआ। विवाह के बाद वह अपने ससुराल में ही रहने लगें। संवत् 1675 में शाहजहाँ वृन्दावन आया और स्वामी हरिहर दास जी के स्थान का दर्शन करने के निमित्त विधुवन गया। वहाँ महात्मा नरहरिदास जी ने बिहारी की काव्यनिपुणता का बादशाह के समक्ष वर्णन किया जिसे सुनकर शाहजहाँ इन्हें अपने साथ आगरा ले गया। आगरा में इन्होंने फ़ारसी की शायरी का अध्ययन किया। यहीं इनकी अब्दुर्रहीम खानखाना से भेंट हुई। कहते है, खानखाना की प्रशंसा में भी बिहारी ने कुछ दोहे लिखे जिनसे प्रसन्न होकर रहीम ने इन्हें प्रभूत धन पुरस्कार में दिया।"[29]

डॉ. नगेन्द्र के इस कथन से बिहारी के जीवन की विभिन्न घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है। इन्हीं घटनाओं में एक घटना शाहजहाँ के पुत्र जन्मोत्सव की है। शाहजहाँ ने अपने पुत्र के जन्मोत्सव में अनेक राजा महाराजाओं को आमंत्रित किया। कवि बिहारी ने इस अवसर पर अपनी काव्य प्रतिभा का जादू बिखेर अनेक राजाओं को प्रभावित किया जिसके कारण उन

राजाओं ने बिहारी की वार्षिक वृत्ति अपने दरबार से बाँध दी। इन्हीं राजाओं में राजा जयसिंह भी एक थे।

अपनी वार्षिक वृत्ति लेने के लिए बिहारी नियमानुसार कुछ राजाओं के यहाँ जाया करते थे। संवत् 1692 में बिहारी अपनी वार्षिक वृत्ति लेने जब आमेर पहुंचे तो उन्हें वहाँ ज्ञात हुआ कि वहाँ के राजा जय सिंह अपनी नवपरिणीता रानी के वय:संधि एवं सौन्दर्य पर रीझकर राजकाज छोड़ महल में भीतर ही रहते हैं, इसलिए बिहारी ने बड़े कौशल से महल के भीतर राजा को दोहे के रूप में कान्तासम्मित उपदेश लिखकर उसे पुष्प की डलियों में डाल कर राजा तक पहुंचा दिया, जो नियमित रूप से मालिन द्वारा महाराज की सेज सज्जा के लिए ले जाई जाती थी। बिहारी के इस दोहे ने राजा जयसिंह पर ऐसा प्रभाव डाला की वे अन्तःपुर के साथ-साथ अपने श्रृंगार विलास से भी बाहर हो गए और पुन: राजकार्य में लग गये। बिहारी को राजा जयसिंह ने उनके इस नैपुण्य के लिए अंजुली भर मुद्राएं देकर सत्कार किया तथा उनकी प्रंशसा करते हुए भविष्य में ऐसे दोहों की रचना पर सम्मान व पुरस्कार का आश्वासन देकर बिहारी को दोहे रचने की प्रेरणा दी। बिहारी ने इसके पश्चात राजा जयसिंह के ही राज्याश्रय में रहकर काव्यसृजन के रूप में 'बिहारी सतसई' की रचना की।

देहांत :

किवदन्ती के अनुसार बिहारी का देहावसान ब्रज में होना प्रसिद्ध है किन्तु इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। इनके देहावसान का समय मिश्रबन्धु,[30] रामचन्द्र शुक्ल,[31] डॉ. नगेन्द्र[32] लगभग संवत् 1720 के आसपास मानते हैं जबकि जगन्नाथदास रत्नाकर जी[33] 'कविवर बिहारी' नामक पुस्तक में संवत् 1721 को बिहारी की मृत्यु स्वीकार करते हैं। अत: बिहारी सम्भवतः 1721 के आस पास तक वर्तमान रहे होंगे।

कविवर बिहारी के सम्पूर्ण जीवन पर विचार करते हुए उनके जीवन के कई पक्ष उजागर होते हैं। यथा - बिहारी ने बड़े-बड़े विद्वानों, प्रकांड पंडितो और प्रसिद्ध महात्माओं से सत्संग प्राप्ति कर संस्कृत, फ़ारसी, हिंदी, प्राकृत एवं उर्दू आदि भाषाओं का अध्ययन किया और साहित्य एवं संगीत में सिद्धहस्थ होकर सम्राट, महाराज, मंत्री आदि लोगों के बीच अपना जीवन बिताया। इससे उनके व्यक्तित्व की भी बहुत सी बातें हमारी समझ में आती हैं। डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन के शब्दों में, "कविवर बिहारी का जीवन देशाटन, विद्या अध्ययन, संगीत, श्वसुरालय के अनुभव, राजाओं का गहरा सम्पर्क, राष्ट्रीय भावना भक्ति एवं श्रृंगार के विविध तत्वों का ऐसा अनुपम पंचामृत है जो हिंदी साहित्य में अपना अक्षुण्ण महत्त्व रखता है।"[34]

बिहारी का व्यक्तित्व उनके इसी परिवेश से निर्मित एवं विकसित हुआ है। यही कारण है कि वे प्रेमी, उदार एवं आत्माभिमानी कवि के रूप में दिखाई देते हैं जिनमें राष्ट्रीय व जातीय प्रेम भी भरपूर था। उन्होंने जीवन भर किसी की अनुचित प्रशंसा नहीं की थी। उनका जातीय प्रेम इस बात से ही स्पष्ट है कि अपने संरक्षक राजा जयसिंह के औरंगजेब की ओर से शिवाजी से लड़ाई पर प्राप्त होने वाली विजय पर उन्होंने कोई ख़ुशी और प्रशंसा व्यक्त नहीं की बल्कि इससे अपनी असंतुष्टि अन्योक्ति के माध्यम से व्यक्त की :

स्वारथु, सुकृत न, श्रमु, वृथा, देखि, बिहंग विचारि।

बाज, पराए पानी परि तूं पच्छीनु न मारि।।

मिश्रबंधु भी उनके राष्ट्रीय और जातीय प्रेम का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि "बिहारी ने शिवाजी की पराजय का हाल स्पष्ट नहीं लिखा यद्यपि स्वयं मिर्जा राजा जयसिंह ने उन्हें हराया था। इससे जान पड़ता है कि मुगलों की और से जयसिंह का शिवाजी से लड़ना इन्हें भला नहीं लगा। इस बात से प्रच्छन्न रूप से इनका जातीय प्रेम देख पड़ता है।"[35]

बिहारी के व्यक्तित्व की इन्हीं विशेषताओं से गणपतिचन्द्र गुप्त भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते और कहते हैं, "बिहारी अत्यंत प्रतिभाशाली, सुविकसित रुचि से सम्पन्न, रसिकता से ग्रसित, युगीन संस्कारों से युक्त, गंभीर एवं व्यापक अध्ययन से युक्त, सीमित अनुभूतियों से अनुप्राणित, अनेक प्रेरणाओं एवं विभिन्न प्रयोजनों से काव्य रचना करने वाले संग्रहशील एवं समन्वयवादी व्यक्ति थे। अनुभूति क्षेत्र की सीमाओं ने ही उन्हें सीमित कर दिया अन्यथा उन्हें महाकवि का व्यक्तित्व प्राप्त था।"[36]

इस प्रकार संक्षेप में बिहारी के व्यक्तित्व को शब्दबद्ध किया जाए तो गम्भीर और विनोदशीलता से समन्वित, कर्तव्यपरायण, स्पष्टवादी, चाटुकारिता से परे, रसप्रवण व रसिक स्वभाव के साथ सूक्ष्म दृष्टि आदि अनेक गुण बिहारी के व्यक्तित्व की पहचान हैं।

1.3 बिहारी का कृतित्व :

कविवर बिहारी की 'बिहारी सतसई' एकमात्र उपलब्ध रचना है। बिहारी द्वारा रचित सतसई का महत्त्व इसी बात से स्पष्ट है कि 'सतसई' कहने या सुनने से प्राय: सर्वप्रथम 'बिहारी सतसई' का ही बोध होता है। 'सतसई' संस्कृत के सप्तशती का अपभ्रंश रूप है। पं. पद्मसिंह शर्मा के अनुसार, "'सतसई' और 'सतसैया' शब्द संस्कृत के 'सप्तशती' और 'सप्तशतिका' शब्दों के रूपान्तर हैं, जो 'सात सौ पद्यों का संग्रह' इस अर्थ में योगरूढ़ हो गए हैं।"[37]

हिंदी के सतसई ग्रंथो में 'बिहारी सतसई' की गणना उच्चकोटि के साहित्यिक ग्रंथो में की जाती है। इसमें भक्तिकालीन कवियों के प्रेम-तत्त्व के विवेचन के साथ-साथ नीति, श्रृंगार, प्रकृति-चित्रण आदि नवीन विषयों का भी समावेश है और यही इसकी लोकप्रियता का कारण भी है।

'बिहारी सतसई' में दोहों की संख्या पर विद्वानों के विभिन्न मत हैं। सभी टीकाकार व आलोचक 'बिहारी सतसई' में दोहों की संख्या लगभग 700 स्वीकार करते हैं। मिश्रबंधु 'मिश्रबंधु विनोद' में अपना मत स्पष्ट करते है कि "सतसई में कुल 719 दोहें हैं।"[38] जबकि जगन्नाथदास जी ने पर्याप्त छानबीन के बाद सतसई के 713 दोहों को ही प्रामाणिक मानकर वर्णित किया है।

'बिहारी सतसई' का रचनाकाल प्राचीन टीकाकार ज्वाला प्रसाद मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास तथा लल्लूलाल संवत् 1719 मानते हैं जबकि मिश्रबंधु बिहारी सतसई के रचनाकाल पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं, "सतसई का रचना काल 1707 (खोज 1903) में मिलता है।"[39] शुक्ल जी की दृष्टि में 'बिहारी सतसई' के सबसे प्रामाणिक टीकाकार जगन्नाथदास रत्नाकर हैं जिन्होंने 1704 संवत् में 'बिहारी सतसई' की रचना मानी है।

संस्कृत, प्राकृत तथा हिंदी के सतसई साहित्य में जितनी भी मौलिक उद्भावनाओं और कल्पनाओं का प्रादुर्भाव हुआ था, उन सभी का चरम विकास बिहारी द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' में दिखाई पड़ता है। 'बिहारी सतसई' का निर्माण बिहारी ने राजा जयसिंह की आज्ञा से किया था। 'बिहारी सतसई' के प्राचीन टीकाकारों पं. अम्बिकादत्त व्यास, ज्वालाप्रसाद मिश्र आदि ने अपनी टीकाओं में बिहारी की आश्रय प्राप्ति एवं सतसई की रचना व उसकी प्रेरणा सम्बन्धी एक घटना का उल्लेख किया है जिसे प्राय: सभी इतिहासकारों व आलोचकों ने मान्यता दी है। घटनानुसार जयपुर के राजा मिर्जा जयसिंह अपनी नवविवाहित रानी के मोह में इस प्रकार से बंधे थे कि उन्होंने शासक के समस्त उत्तरदायित्वों से स्वयं को विलग कर लिया था। बिहारी को महल में यह ज्ञात होने पर उन्होंने तत्काल मिर्जा राजा जयसिंह को

उत्तरदायित्त्व के प्रति सचेत करने के मन्तव्य से एक दोहा लिखकर उसे राजा तक पहुँचा दिया जो कि इस प्रकार था -

"नहि परागु नहि मधुर मधु नहिं विकासु इहिं काल।

अली, कलि ही सुन्यौ बध्यौ, आगे कौन हवाल।।"[40]

राजा द्वारा यह दोहा पढ़ते ही वह बिहारी की कवित्व प्रतिभा पर मोहित हो गए और उनका सम्मान करते हुए उनसे ऐसे ही और अधिक दोहों की रचना का प्रस्ताव रखा। इसी के परिणामस्वरूप बिहारी द्वारा 'बिहारी सतसई' की रचना प्रारम्भ हुई। बिहारी के सम्बन्ध में सतसई रचना प्रेरणा संबंधी इस घटना का प्रमाण बिहारी द्वारा रचित यह दोहा है :

"हुकुम पाइ जयसाहि कौ, हरि राधिका-प्रसाद।

करी बिहारी सतसई, भरी अनेक संवाद।।"[41]

बिहारी द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' का सतसई-परम्परा में भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिन प्राचीन संस्कृत तथा प्राकृत सप्तशतियों को सतसई परम्परा की पूर्ण विकसित अवस्था माना जाता था उनमें 'गाथा सप्तशती' और 'आर्य सप्तशती' का व्यापक प्रभाव 'बिहारी सतसई' पर स्पष्टत: ही दिखाई देता है, उसमें 'बिहारी सतसई' की मौलिकता तथा लोकप्रियता को स्पष्ट करते हुए डॉ. हरेन्द्र प्रताप सिन्हा के शब्द हैं, "प्राचीन संस्कृत तथा प्राकृत सप्तशतियों में काव्य तत्त्व का वह रूप नहीं मिलता जो 'बिहारी सतसई' में है। इसमें भक्तिकालीन कवियों के प्रेम तत्त्व का विवेचन भी है और साथ ही साथ नीति, श्रृंगार, प्रकृति-चित्रण आदि नवीन विषयों का भी समावेश है।"[42]

बिहारी सतसई से प्रेरणा प्राप्त कर परवर्ती कवियों ने अनेक सतसईयों की रचना की जिनमें मतिराम सतसई, वृन्द सतसई, वीर सतसई, हरिऔध सतसई आदि के नाम उल्लेखीय हैं। सतसई की इस श्रृंखला में सूर्यमल तथा वियोगी हरि ने एक ओर वीर भावों से इसे सींचा वहीं दूसरी ओर हरिऔध इसमें श्रृंगार रस का संचार कर रहें हैं, जबकि इनसे अलग वृन्द की सतसई नीति का मार्ग प्रशस्त करने वाली रचना है।

बिहारी सतसई की अक्षुण्णता का आधार उसका भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों ही है इसमें प्रकृति के रमणीक दृश्यों का नियोजन, सुंदर अलंकर-विधान, वक्रोक्ति और वागवैद्ग्ध्य से उत्पन्न चित्रात्मकता, मानव-स्वभाव व प्रकृति के सजीव चित्रांकन के साथ चित्रात्मक उपस्थापन, श्रृंगार-रस के मिलन व विरह का आकर्षक उद्घाटन तथा लोकव्यवहार और नीतिशास्त्र का विलक्षण विश्लेषण सभी कुछ एक साथ मिल जाता है। 'बिहारी सतसई' की इस बहुविध रूप से उपजी लोकप्रियता से प्रभावित होकर अनेक कवियों ने 'बिहारी सतसई' पर टीकाएँ लिखीं जिनमें कृष्णलाल कवि की टीका, मान सिंह की टीका, चरण दास की टीका, अमरचंद्रिका टीका, हरिप्रकाश टीका आदि टीकाएँ साहित्य में 'बिहारी सतसई' के महत्त्व की घोतक हैं। गुरुदेव नारायण 'बिहारी' और 'बिहारी सतसई' का महत्त्व अपने शब्दों में व्यक्त करते हैं, "हिंदी की मुक्तक परम्परा में बिहारी का स्थान सर्वोपरि है। हिंदी में तुलसी कृत 'रामचरितमानस' के पश्चात 'बिहारी सतसई' ही ऐसा ग्रंथ है, जिसकी सर्वाधिक टीकाएँ और अनुवाद हुए हैं, श्रृंगार रस के क्षेत्र में सतसई को जितना आदर प्राप्त हुआ, उतना अन्य किसी को नहीं।"[43] तथा "जिन भावों को अभिव्यक्त करने के लिए प्राकृत कवियों ने गाथा छंद, गोवर्धनाचार्य ने आर्याछन्द और अमरुक ने शार्दूलविक्रीड़ित जैसे बड़े-बड़े छंद पसंद किये, उसी काम के लिए बिहारी लाल ने दोहा जैसा छोटा छंद चुना।... ज़रा से दोहे में जो अर्थ सिमटा बैठा था वह वहाँ से निकलते ही इतना फैला कि कुंडलियों और कवित्तों के बड़े मैदान

में नहीं समा सका। मानो गंगा का समृद्ध वेग प्रवाह है जो शिवजी की लटों से निकलकर फिर किसी के काबू में नहीं आता।"[44]

देखा जाये तो, कविवर बिहारी ने अपनी सतसई की रचना दोहा छंद में की जिसमें छोटे से दोहे छंद में भरे गूढ़ भाव और उसके प्रभाव का गहरापन अभी भी प्रशंसनीय बना हुआ है। इसी कारण कवियों को कहना पड़ा :

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।

देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर।।

समग्रता में, बिहारी के युग में व्यक्त वैभव, विलास, राजनीतिक हलचल, सामजिक कुरीतियों व धार्मिक विसंगतियों ने बिहारी के उस व्यक्तित्व को गहरा प्रभावित किया जो विविध भाषाओं और साहित्य के ज्ञानार्जन द्वारा बिहारी में निर्मित हुआ था। युगीन परिस्थितियों की आवश्यकता ने जहाँ एक और बिहारी को दरबारी बनाया वहीं यह बिहारी के अनुभव, चिंतन और तर्कपूर्ण विवेक के कारण उनके व्यक्तित्व में तत्कालीन परिस्थितियों की क्रिया-प्रतिक्रिया स्वरूप रसिकता, गम्भीरता, विनोदशीलता, कर्तव्यपरायणता, स्पष्टवादिता, राष्ट्रवादिता तथा आत्माभिमानी गुण जैसे भावों के संचार का माध्यम भी बना जिसका प्रभाव उनकी सतसई में भी स्पष्टत: देखा जा सकता है। दोहे में बिहारी ने युगीन आवश्यकतानुरूप एक ओर काव्य-सृजन के समय दरबारी कवि होने के कर्तव्य का पालन करते हुए राजाओं की रुचि अनुरूप दरबार, श्रृंगार, विलास, नायक-नायिका भेद आदि को काव्य का विषय बनाकर चित्रांकन किया तो दूसरी ओर एक कवि के रूप में अपने सामाजिक दायित्वों का अनुपालन करते हुए धर्म में फैली विसंगति और सामजिक कुरीतियों से लोगों में जागृति लाने हेतु भक्ति

तथा नीति को भी अपने दोहे के माध्यम से प्रसारित करने का प्रयास किया है जो की हिंदी साहित्य में भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

सन्दर्भ :

1. शुक्ल, रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 160
2. मिश्रबंधु; मिश्रबंधु विनोद; गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, 26-30, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ; संस्करण: 1983; पृष्ठ. 430
3. मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद; हिंदी साहित्य का अतीत(भाग-2); वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 2006; पृष्ठ. 36
4. शुक्ल, रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 164
5. शर्मा, हरवंशलाल; शास्त्री, परमानन्द; बिहारी और उनका साहित्य; भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ; पृष्ठ. 13
6. यादव, राजकिशोर सिंह; बिहारी की काव्य-कला; पृष्ठ. 12
7. नारायण, गुरुदेव; बिहारी: एक नव्यबोध; बालोदय प्रकाशन, 315/148, बाग महानारायण, लखनऊ; संस्करण: 1979; पृष्ठ. 23
8. नगेन्द्र; हरदयाल; हिंदी साहित्य का इतिहास; मयूर पेपरबैक्स, ए 95, सेक्टर 5, नोएडा 201301; संस्करण: 2012; पृष्ठ. 263

9. ‘रत्नाकर’, जगन्नाथदास; बिहारी-रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 49; दोहा संख्या-54
10. वही; पृष्ठ. 85; दोहा संख्या-141
11. शील, ईश्वरदत्त; हिंदी साहित्य का मध्यकाल; गरिमा प्रकाशन, कानपुर 208021, भारत; संस्करण: 2013; पृष्ठ. 380
12. नगेन्द्र; हरदयाल; हिंदी साहित्य का इतिहास; मयूर पेपरबैक्स, ए 95, सेक्टर 5, नोएडा 201301; संस्करण: 2012; पृष्ठ. 264
13. वही; पृष्ठ. 264
14. दास, रायकृष्ण; भारतीय मूर्तिकला; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; संस्करण: 2005; पृष्ठ. 141-142
15. सिन्हा, रणवीर सिंह; कविवर बिहारीलाल और उनका युग; पृष्ठ. 129
16. यादव, राजकिशोर सिंह; बिहारी की काव्य-कला; पृष्ठ. 19
17. मिश्रबंधु; मिश्रबंधु विनोद ; गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, 26-30, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ; संस्करण: 1983; पृष्ठ. 431
18. शुक्ल, रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 167
19. जैन, रवीन्द्रकुमार; बिहारी नवगीत; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 1976; पृष्ठ. 2
20. शुक्ल, रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल,

दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ.167

21. 'रत्नाकर', जगन्नाथ दास; बिहारी-रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 68; दोहा संख्या-101
22. शुक्ल, रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 167
23. सिलाकारी, पं. लोकनाथ द्विवेदी; बिहारी-दर्शन; राष्ट्रीय प्रकाशन-मण्डल, मछुआटोली, पटना; संस्करण: संवत् 2007; पृष्ठ. 4
24. जैन, रवीन्द्रकुमार; बिहारी नवगीत; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 1976; पृष्ठ. 2
25. गुप्त, गणपतिचन्द्र; हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास(प्रथम खण्ड); लोकभारती प्रकाशन; संस्करण: 2010; पृष्ठ. 455
26. रमेशचन्द्र; बिहारी:व्यक्तित्व एवं जीवन-दर्शन; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 1974; पृष्ठ. 23
27. रमाशंकर तिवारी; बिहारी का काव्य-लालित्य; ग्रन्थम प्रकाशन, रामबाग, कानपुर-12; संस्करण: 1970; पृष्ठ.13
28. जैन, रवीन्द्रकुमार; बिहारी नवगीत; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 1976; पृष्ठ. 3
29. वही; पृष्ठ. 3

30. नगेन्द्र (सं.); हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास (षष्ठ भाग); नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; पृष्ठ. 512
31. मिश्रबंधु; मिश्रबंधु विनोद (द्वितीय भाग); गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, 26-30, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ; संस्करण: 1983; पृष्ठ. 432
32. शुक्ल, रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 246
33. नगेन्द्र (सं.); हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास (षष्ठ भाग); नगरी प्रचारिणी सभा, काशी; पृष्ठ. 513
34. 'रत्नाकर', जगन्नाथदास; कविवर बिहारी; पृष्ठ.382
35. जैन, रवीन्द्रकुमार; बिहारी नवगीत; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 1976; पृष्ठ. 5
36. मिश्रबंधु; हिंदी नवरतन; संस्करण: द्वितीय; पृष्ठ. 304
37. गुप्त, गणपतिचन्द्र; बिहारी सतसई वैज्ञानिक समीक्षा; संस्करण: प्रथम ; पृष्ठ. 41
38. शर्मा, पण्डित पदमसिंह; बिहारी की सतसई; काशीनाथ शर्मा प्रकाशक, काव्यकुटीर नायकनगला, बिजनौर; संस्करण: 1991 वि०; पृष्ठ.17
39. मिश्रबंधु; मिश्रबंधु विनोद (द्वितीय भाग); गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, 26-30, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ; संस्करण: 1983; पृष्ठ. 432
40. वही; पृष्ठ. 432
41. 'रत्नाकर', जगन्नाथ दास; बिहारी-रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ.

42. दोहा संख्या-38

43. वही; पृष्ठ. 311; दोहा संख्या-713

44. सिन्हा, हरेन्द्र प्रताप; बिहारी सतसई का मूल्यांकन; स्मृति प्रकाशन, 61, महाजनी टोला, इलाहाबाद-3; संस्करण: 1971; पृष्ठ. 20

45. नारायण, गुरुदेव; बिहारी : एक नव्य बोध; बालोदय प्रकाशन, 315/148, बाग महानारायण, लखनऊ; संस्करण: 1979; पृष्ठ. 29

46. शर्मा, पण्डित पदमसिंह; बिहारी की सतसई; काशीनाथ शर्मा प्रकाशक, काव्यकुटीर नायकनगला, बिजनौर; संस्करण: 1991 वि०; पृष्ठ. 32